R.N.I. No. : DELBIL / 2001/4685 Postal regn. No. : A.L.G. / 29 / 2015-17

मूल्य-4 रुपये, वर्ष-17, अङ्क-9 सितम्बर 2018

श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, अलीगढ़ (उ०प्र०) का
मासिक मुख-समाचार पत्र

मङ्गलायतन

धन्य मुनिराज हमारे हैं....

भगवान महावीर निर्वाणोत्सव के पावन अवसर पर तीर्थधाम मङ्गलायतन में

श्री आदिनाथ कुन्दकुन्द कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, अलीगढ़ एवं

श्री कुन्दकुन्द प्रवचन प्रसारण संस्थान उज्जैन

के संयुक्त तत्त्वावधान में आयोजित

आध्यात्मिक शिक्षण शिविर एवं श्री 170 तीर्थंकर विधान व निर्वाण महोत्सव

सोमवार, दिनांक 05 नवम्बर से, शनिवार, दिनांक 10 नवम्बर 2018

मङ्गल आमंत्रण

सद्धर्मानुरागी बन्धुवर,
सादर जयजिनेन्द्र एवं शुद्धात्म सत्कार!

आपको जानकर हर्ष होगा, वीर जिनेन्द्र के शासन में, कुन्दकुन्दादि दिगम्बर आचार्यों की अनुकम्पा से और पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी, तद्भक्त प्रशममूर्ति बहिनश्री चम्पाबेन के प्रभावना योग से तीर्थधाम मङ्गलायतन आप सभी के सहयोग से जिनशासन की आराधना-प्रभावना का महत् कार्य कर रहा है।

प्रतिवर्ष की भाँति इस वर्ष भी शासन नायक भगवान श्री महावीरस्वामी के निर्वाण कल्याणक प्रसंग पर तीर्थधाम मङ्गलायतन के सुरम्य वातावरण में **छह दिवसीय आध्यात्मिक शिक्षण शिविर** का आयोजन **सोमवार, दिनांक 05 नवम्बर से शनिवार, दिनांक 10 नवम्बर 2018** तक किया जा रहा है।

इस शिविर में पूज्य गुरुदेवश्री के भवतापहारी सी.डी. प्रवचन, उन्हीं के मार्ग की प्रभावना करनेवाले विद्वानों के स्वाध्याय, पूजन-विधान एवं मङ्गलार्थियों द्वारा तात्विक एवं सांस्कृतिक कार्यक्रम प्रस्तुत किये जायेंगे। प्रतिदिन प्रात: 5 बजे से रात्रि 10 बजे तक विभिन्न विद्वानों के माध्यम से 8 से 10 घण्टे तत्त्वज्ञान श्रवण का अपूर्व अवसर प्राप्त होगा।

इस अवसर पर श्री 170 तीर्थंकर विधान एवं कैलाशपर्वत पर कृत्रिम पावापुरी की रचना बनाकर भगवान महावीर का निर्वाण महोत्सव मनाया जायेगा। सभी तत्त्वप्रेमी महानुभावों से निवेदन है धर्म लाभ लेने हेतु शीघ्र ही पत्र या फोन द्वारा सूचना प्रदान करें।

ऐसे दुर्लभ अवसर पर लाभ प्राप्त करने हेतु आप सभी को हमारा भावभीना आमन्त्रण है। कृपया अवश्य पधारकर तत्त्वज्ञान का लाभ अर्जित कीजिए। जैनं जयतु शासनम्।

मुख्य आकर्षण ❀ 170 तीर्थंकर विधान व निर्वाण महोत्सव ❀ पूज्य गुरुदेवश्री का सी.डी. प्रवचन ❀ विद्वानों द्वारा विशिष्ट स्वाध्याय ❀ आध्यात्मिक गोष्ठी ❀ श्री आध्यात्मिक भजन सन्ध्या ❀ निर्वाण महोत्सव ❀ आओ चलो मुक्ति की ओर-उज्जैन द्वारा ❀ सांस्कृतिक प्रस्तुति-मङ्गलार्थियों द्वारा ❀ साधर्मी मिलन ❀ मङ्गलायतन दर्शन

आलोकित ज्ञानदीप ❀ पण्डित विमलदादा झाँझरी उज्जैन ❀ ब्रह्मचारी सुमतप्रकाशजी खनियाधाना ❀ पण्डित संजीव गोधा जयपुर ❀ पण्डित प्रदीप झाँझरी उज्जैन ❀ पण्डित अरहन्त झाँझरी उज्जैन ❀ पण्डित अशोक लुहाड़िया, पण्डित सचिन जैन, पण्डित संजय शास्त्री, पण्डित सुधीर शास्त्री, पण्डित सचिन्द्र शास्त्री, तीर्थधाम मङ्गलायतन

– निवेदक –

अजितप्रसाद जैन, अध्यक्ष/ स्वप्निल जैन, महासचिव
श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, अलीगढ़ (उ.प्र.)

प्रदीप झांझरी, अध्यक्ष / नागेश जैन, महासचिव
श्री कुन्दकुन्द प्रवचन प्रसारण संस्थान, उज्जैन (म.प्र.)

सम्पर्कसूत्र एवं कार्यक्रम स्थल

सुधीर जैन शास्त्री, तीर्थधाम मङ्गलायतन, डीपीएस सीनियर विंग के पास,
अलीगढ़-आगरा राजमार्ग, सासनी, हाथरस (उ.प्र.)

Mobile : 9997996346, 9756633800 www.mangalayatan.com info@mangalayatan.com

मङ्गलायतन

श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, अलीगढ़ (उ.प्र.) का

मासिक मुखपत्र

वर्ष-18, अङ्क-9 (वी.नि.सं. 2544) सितम्बर 2018

गतांक से आगे...

प्रशममूर्ति बहिनश्री के वचनामृतों का भावानुवाद

(छन्द - वीर)

बाहर में भक्ति आदि का, कारज चाहे कुछ भी हो।
उसमें आनंद नहीं तनिक भी, सच्चा आनंद तल से हो ॥66॥

चाहे कैसा भी प्रसंग हो, मात्र शांति ही रखना है।
लाभ शांति से, काम शांति से, शांति से ही जीना है ॥67॥

पूज्य गुरु की वाणी मिलना, अनुपम ये सौभाग्य मिला।
दो-दो विरियाँ, तत्त्व श्रवण से, जीवन का सद्भाग्य जगा॥
यदि करे पुरुषार्थ जो श्रोता, आत्म निकट में जा जाये।
अमृत रस झरती ये वाणी, जन्म मरण भी टल जाये ॥68॥

आत्मा का ही रहे प्रयोजन, जीवन यों ही जाता है।
जहाँ आत्मा का रस आये, वहाँ विभाव झर जाता है ॥69॥

सब कुछ आतम में ही अंदर, बाहर कुछ भी नहीं रखा।
यदि जानने की इच्छा है, तो तू निज पुरुषार्थ जगा॥
पूर्ण दशा होते ही प्रगटे, केवल ज्ञान मह सुखकार।
जगत जगत में, रहने पर भी, प्रगटित होते ज्ञेयाकार ॥70॥

भावानुवाद—संजयकुमार जैन

संस्थापक सम्पादक

स्व. पण्डित कैलाशचन्द्र जैन, अलीगढ़

मुख्य सलाहकार

श्री बिजेन्द्रकुमार जैन, अलीगढ़

सम्पादक

पण्डित संजय जैन शास्त्री, मङ्गलायतन

सम्पादक मण्डल

ब्रह्मचारी पण्डित ब्रजलाल शाह, वढ़वाण

बाल ब्रह्मचारी हेमन्तभाई गाँधी, सोनगढ़

डॉ. राकेश जैन शास्त्री, नागपुर

श्रीमती बीना जैन, देहरादून

सम्पादकीय सलाहकार

पण्डित रतनचन्द भारिल्ल, जयपुर

पण्डित विमलदादा झाँझरी, उज्जैन

श्री चिरंजीलाल जैन, भावनगर

श्री प्रवीणचन्द्र पी. वोरा, देवलाली

श्री वसन्तभाई एम. दोशी, मुम्बई

श्री श्रेयस् पी. राजा, नैरोबी

श्री विजेन वी. शाह, लन्दन

पण्डित सुधीर जैन शास्त्री, मङ्गलायतन

मार्गदर्शन

डॉ. किरीटभाई गोसलिया, अमेरिका

पण्डित अशोक लुहाड़िया, अलीगढ़

पण्डित देवेन्द्र जैन, बिजौलियां

अङ्क के प्रकाशन में सहयोग

वरजू बहिन

सुपुत्र **श्री जवरचंदजी**

दुलीचंदजी हथाया

(थाणावाले) मुम्बई-7

क्या - कहाँ

सुखदायक सामायिक 5

मोक्ष का भजन 7

आनंदमय स्वानुभूति 12

समयसार का श्रवण करने से..... 16

अमूढ़दृष्टि-अंग में प्रसिद्ध..... 18

श्री समंतभद्रस्वामी 24

उपदेश सिद्धांत रत्नमाला 29

समाचार-दर्शन 33

शुल्क :

वार्षिक : 50.00 रुपये

एक प्रति : 04.00 रुपये

सुखदायक सामायिक

परम आनंदमय, स्वानुभूतिगम्य विशाल गंभीर आत्मतत्त्व

[श्री नियमसार कलश : 219-कार्तिक कृष्णा 7 के प्रवचन से]

अरे, इस संसार में अनादि से दु:खी जीव को शांति के लिए एक अपना परम आनंदमय तत्त्व ही आश्रयरूप है; ऐसे तत्त्व के ध्यान में जिसकी ज्ञानपरिणति परिणमित हुई है, वह जीव अंतर में किसी विशाल गंभीर तत्त्व को प्राप्त होता है कि जो अत्यंत शांत है, जिसमें दु:ख या अशांति का नाम भी नहीं है।—ऐसे जीव को सामायिक कही जाती है।

अहा, मेरा आनंदमय निर्दोषतत्त्व, वह मुझमें प्राप्त ही है—इस प्रकार धर्मी अपनी बुद्धि को अंतर में लगाता है; इसलिए मेरे ऐसे तत्त्व की प्राप्ति के लिए अन्य किन्हीं रागादिभावों का आलंबन नहीं है; वे रागादिभाव तो मेरे आनंदमय तत्त्व से दूर-दूर हैं। ऐसे तत्त्व को ध्याने पर अंतर में से परम आनंद आता है और वही दु:ख से मुक्त होने का उपाय है।

मेरी परिणति तो ज्ञान और आनंदरूप हो—ऐसा ही मैं हूँ; बाकी रागादि की किन्हीं वृत्तियों में मेरा आत्मा परिणमित नहीं होता। विकल्प के वेदन में आत्मा नहीं आता; सम्यग्दर्शन और आनंद उसी को होता है कि जो अपनी बुद्धि को, अपने ज्ञानपरिणाम को विकल्प से पार करके अंतर में परमतत्त्व में परिणमित करता है। आनंदमय आत्मा विकल्पगोचर नहीं है, वह तो शुद्धात्माश्रित ऐसे परिणाम को ही गोचर है।

परम आनंदमय आत्मतत्त्व ऐसा कोई विशाल है कि जो गंभीरतत्त्व अपनी स्वानुभूतिरूप शुद्धपरिणति को ही गम्य है, अन्य किसी प्रकार वह गम्य नहीं होता। अहा, सम्यग्दृष्टि की अंतरपरिणति में अनंत सागर जितने आनंद से दोलायमान पूर्ण विशाल तत्त्व अनुभव में आ गया है। ऐसे महान

तत्त्व में या उसकी अनुभूति में दुःख का तो कोई नामनिशान नहीं है। दुःख से दूर और परम आनंद के रस से भरपूर विशाल गंभीर तत्त्व धर्मात्मा ने देख लिया है कि अहो! यह परमतत्त्व मैं ही हूँ; यह तत्त्व स्वानुभूति के बिना जगत के जीवों को मन से या वचन से दूर है। परम शांतरस में डूबा हुआ यह तत्त्व विकल्प की अशांति में कैसे आएगा? चैतन्य का मार्ग विकल्प से दूर है; चैतन्य की गति विकल्प से न्यारी है। भाई, ऐसे तेरे तत्त्व की कोई अचिंत्य परम महिमा है... उसे लक्ष्य में ले तो उसके आश्रय से एकाग्रता द्वारा निर्विकल्प आनंदमय परम वीतरागी सामभावरूप सामायिक प्रगट हो। वही सामायिक सुखदायक एवं मुक्तिदायक है।

[आत्मधर्म (हिन्दी), अंक-8 (दिसम्बर-1971), वर्ष-27]

मुनिधर्म के अवलंबनस्वरूप गृहस्थधर्म किसे प्रिय नहीं?

सन्तः सर्वसुराऽसुरेन्द्रमहितं, मुक्तेः परं कारणं;
रत्नानां दधति त्रयं त्रिभुवन-प्रद्योति काये सति।
वृत्तिस्तस्य यदन्नतः परमया भक्त्याऽर्पिताज्जायते;
तेषां सद्गृहमेधिनां गुणवतां, धर्मो न कस्य प्रियः ॥12॥

अर्थात् जिस सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान-सम्यक्चारित्ररूपी रत्नत्रय की की समस्त सुरेन्द्र तथा असुरेन्द्र भक्ति से पूजन करते हैं तथा जो मोक्ष का उत्कृष्ट कारण है अर्थात् जिसके बिना कदापि मुक्ति नहीं हो सकती तथा जो तीन लोक का प्रकाश करनेवाला है—ऐसे सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान-सम्यक्चारित्ररूप रत्नत्रय को देह की स्थिरता होने पर ही मुनिगण धारण करते हैं तथा श्रद्धा, तुष्टि आदि गुणों से संयुक्त गृहस्थियों के द्वारा भक्ति से दिए हुए दान से उन उत्तम मुनियों के शरीर की स्थिति रहती है; इसलिए ऐसे गृहस्थों का धर्म किसको प्रिय नहीं होगा? अर्थात् सभी उसको प्रिय मानते हैं।

श्री पद्मनन्दि-पंचविंशतिका, धर्मोपदेशामृत, गाथा-12

मोक्ष का भजन

भवछेदक भक्ति का अद्‌भुत वर्णन

शुभरागरूप भक्ति, वह कोई भवछेदक भक्ति नहीं है; सम्यक्त्वादि शुद्धभावरूप वीतरागभक्ति ही सचमुच भवछेदक भक्ति है। ऐसी भक्ति द्वारा अंतर में भगवान की साक्षात् भेंट होती है। जिसमें भगवान की भेंट न हो और भवदु:ख मिले उसे भक्ति कौन कहेगा ? सम्यक्त्वादि के भजन में तो अपने परमात्मतत्त्व की अनुभूति है, अनंत शांति का वेदन है, चैतन्यभगवान साक्षात्कार है।

* श्रमण और श्रावक शुद्धात्मा के आश्रय से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की आराधनारूप जो भक्ति करते हैं, वह मोक्ष की भक्ति है, वह मोक्ष का मार्ग है।
* निज परमात्मतत्त्व का भजन अर्थात् श्रद्धा-ज्ञान-आचरण, वह सच्ची भक्ति है।
* चैतन्य की आराधना, चैतन्य का भजन तो चैतन्यभाव द्वारा होता है, राग द्वारा नहीं होता।
* अरे जीव ! अपने आनंदमय निजगृह को छोड़कर दु:खमय वनवास में कहाँ जा रहा है ?
* सम्यग्दर्शन, वह धर्मभक्ति है; सम्यग्ज्ञान भी धर्मभक्ति है और सम्यक्चारित्र भी धर्मभक्ति है, उन तीनों में शुद्ध रत्नत्रयपरिणामों का सेवन है, उनमें कहीं राग नहीं है। शुद्ध रत्नत्रयपरिणामों का ऐसा भजन अर्थात् आराधना, वह मोक्ष का मार्ग है, वह मोक्ष की भक्ति है। जो ऐसी भक्ति करता है, वह जीव निरंतर भक्त है-भक्त है।
* ऐसी रत्नत्रयभक्ति कैसे होती हैं ? क्या शुभराग द्वारा वह भक्ति होती

है ?—तो कहते हैं कि नहीं; अपना जो परम आत्मतत्त्व, उसकी गहराई में उतरकर, उसके सम्यक् श्रद्धा-ज्ञान-आचरणरूप जो शुद्ध परिणाम, वही सच्ची भक्ति है; ऐसी भक्ति का फल मुक्ति है।

* अहा! अनंत अतीन्द्रिय-आनंद और अनंत अतीन्द्रियज्ञान, ऐसे अनंत भाव जिसमें भरे हुए हैं, ऐसे अपने आत्मा के सन्मुख होकर जो वीतरागी श्रद्धा आदि परिणाम प्रगट हुए, वही आराधनारूप भक्ति है। इसमें द्रव्य-गुण-पर्याय तीनों आ गये और मोक्षमार्ग भी आ गया।
* शुद्ध द्रव्य-गुण-पर्याय ऐसे तीन भावों में आत्मा है। आत्मा के ऐसे अद्‌भुत अलौकिक स्वरूप का प्रकाशन भगवान जिनेन्द्रदेव के ही मार्ग में है। प्रभु! तू स्वयं भगवान है, तू अपने आत्मा का ही भजन कर, उसे भजने से तेरी मुक्ति होगी।
* आत्मा को पर की शरण नहीं है; पर के भजन का शुभविकल्प भी आत्मा को शरणरूप नहीं है; शरणरूप तो अपने आत्मा के आश्रय से जो निर्विकल्प दशा हुई, वही है। आत्मा की निर्विकल्प अनुभूति में जो शुद्ध परिणाम हुए, उनका भजन अर्थात् बारंबार उनका सेवन, वह आराधना है, वह भक्ति है, वह मुक्ति की दातार है। श्री जिनवर भगवान ने मोक्ष के लिए श्रावकों को तथा श्रमणों को ऐसी वीतरागी भक्ति का उपदेश दिया है। श्रावकों को भी शुद्ध परमात्मतत्त्व की सन्मुखता द्वारा शुद्धपरिणतिरूपी आराधना-भक्ति निरंतर वर्तती है, इसलिए वे भक्त हैं—भक्त हैं, अर्थात् वे भी मोक्ष के आराधक हैं।
* भाई, तुझे अपनी दशा बदलना हो तो अपनी रुचि की-ज्ञान की दिशा बदलना पड़ेगी; परोन्मुखता छोड़कर अपने सर्व परिणामों को स्वोन्मुख करना होंगे। अहा! मैं ही परमात्मतत्त्व अचिंत्य अनंत भावों का भंडार हूँ—इस प्रकार परम महिमा लाकर स्ववस्तु में परिणाम को लगा; उसी में शुद्ध रत्नत्रय की आराधना होगी। इसके अतिरिक्त बाह्य में देव-गुरु-शास्त्रादि की भक्ति में उपयोग लगाकर कोई उस शुभराग से मुक्ति

होना माने तो भगवान कहते हैं कि वह सच्चा भक्त नहीं है, वह मुक्ति का आराधक नहीं है।

* शुभरागरूप भक्ति, वह कोई भवछेदक भक्ति नहीं है; सम्यक्त्वादि शुद्धभावरूप वीतरागी भक्ति ही वास्तव में भवछेदकभक्ति है। ऐसी भक्ति द्वारा अंतर में भगवान की साक्षात् भेंट होती है। जिसमें भगवान की भेंट न हो और भवदु:ख मिले, उसे भक्ति कौन कहेगा? सम्यक्त्वादि के भजन में तो अंदर अपने परमात्मतत्त्व की अनुभूति है, अनंत शांति का वेदन है, चैतन्यभगवान का साक्षात्कार है।
* अहा, स्वानुभूतिरूप मार्ग। वह तो अनंत आनंद का देनेवाला है। अनंत आनंद का मार्ग तो अद्‌भुत ही होगा न! जीवों को ऐसे मार्ग का लक्ष्य नहीं है, इसलिए बाह्य में राग के सेवन को मार्ग मान रहे हैं। भाई, तेरा मार्ग राग में नहीं है; तेरा मार्ग तो तेरे चैतन्य में समाया हुआ है। चैतन्य में अगाध गंभीर शांति और अनंत गुणों का भंडार भरा है, उसमें देखने पर तुझे आनंद का समुद्र दिखाई देगा।
* शरीर तो करोड़ों रोगों का घर है, उसमें कही शांति नहीं है और यह चैतन्यप्रभु आत्मा अनंत आनंद का धाम है, उसमें कही रांग का या अशांति का नामनिशान नहीं है। ऐसे चैतन्य की सेवा कर! भाई! शरीर की सेवा में तो अनंत भव व्यतीत किए और दु:खी हुआ; तो अब इस भव में तो शरीरादि से भिन्न चैतन्यतत्त्व की सेवा कर... कि जिससे तेरा अनंत भव का दु:ख मिट जाएगा और आत्मा की परम शांति का तुझे वेदन होगा, तेरे आत्मा में मोक्ष की भनक आएगी।
* जो जीव मुक्त हुए, वे किसको भजकर मुक्त हुए? कि परमात्मा को भजकर मुक्त हुए हैं। कौन परमात्मा? अंतर में शुद्धज्ञानमय कारण-परमात्मा, ऐसा जो अपना आत्मा, उस परमात्मा को सम्यक्‌रत्नत्रय परिणति द्वारा भजकर वे जीव सिद्ध हुए हैं। तू भी सिद्धि के लिए अपने परम आत्मतत्त्व को सम्यक् श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र द्वारा अभेदरूप से भज।

* इसप्रकार रत्नत्रय द्वारा सिद्धपद को साधनेवाला मुमुक्षुजीव, अन्य सिद्ध भगवंतों के भी शुद्धगुणों को पहिचानकर उनकी परमभक्ति करता है, वह व्यवहारभक्ति है। देखो, इसमें भी शुद्धगुणों की प्रतीति सहित—ऐसी बात की है। 'कारणपरमात्मा का अभेदरत्नत्रय द्वारा आराधना करके ही वे सिद्ध हुए हैं'—ऐसा जानकर उनकी भक्ति करता है; परंतु 'इस भक्ति के शुभराग द्वारा सिद्धपद प्राप्त होगा'—ऐसा वह मुमुक्षु नहीं मानता। ऐसी पहिचानपूर्वक जितनी शुद्धरत्नत्रय वीतराग परिणति हुई, उतनी निश्चयभक्ति है, वह मुक्ति का कारण है; उसके साथ पंच परमेष्ठी के शुद्धगुणों की प्रतीति सहित भक्ति, सो व्यवहारभक्ति है। धर्मी श्रावकों तथा श्रमणों को ऐसी दोनों प्रकार की भक्ति होती है। वे उदयभावों से ज्ञानचेतना को अत्यंत भिन्न अनुभव करते हैं; दु:ख से अत्यंत रहित ऐसे आनंद से उनका चित्त भरा है। धर्मी को सम्यक्त्वादि जो भाव प्रगट हुए हैं, उनमें भव का अभाव है, दु:ख का अभाव है, उदयभावों का अभाव है। ऐसी आनंदमय शांत चेतना द्वारा धर्मी जीव अपने परमात्मतत्त्व को भजता-भजता मुक्ति को साधता है, इसलिए वह जीव भक्त है-भक्त है।

* परमात्मा को दु:ख नहीं है तथा परमात्मा की साधक पर्याय में भी दु:ख नहीं है। जो पर्याय परभाव से विमुख होकर परमात्मतत्त्व में प्रविष्ट हुई, उसमें दु:ख कैसा? वह तो आनंद के अनंत सागर में लीन हो गई। अंतर्मुख परमात्मतत्त्व का आनंद अंतर्मुखभाव से ही प्राप्त होता है, उसमें बहिर्मुखभाव का अभाव है। जिस परिणाम में अपने चैतन्य-परमात्मा की भेंट हुई, वह परिणाम वीतरागी जैनशासन है; वही निश्चयभक्ति है, वही मुक्तिमार्ग है। वाह, संतों ने अंतर का मार्ग सुगम कर दिया है।

* अंतर में उतरना, वह एक ही शांति का मार्ग है—ऐसा दृढ़ निर्णय किए बिना परिणामों का बाह्य में भटकना दूर नहीं होगा। मेरा आत्मा ही

परमतत्त्व, उत्कृष्ट शांति का धाम है—ऐसी अपनी तत्त्व की अद्भुत अचिंत्य महिमा जानकर उसमें परिणाम लगाने से परम शांति का वेदन होता है। आत्मा का ऐसा अद्भुत स्वभाव जिसने देखा, वह जीव परभाव से मुक्त हुआ, रागादिभावों को अपनी चेतना परिणति से अत्यंत भिन्न जाना; जैसे जगत के दूसरे पदार्थ चेतना से बाहर हैं, उसीप्रकार रागादिभाव भी चेतना से बाहर हैं। ऐसी चेतनापरिणति ही परमात्मतत्त्व की भक्ति करती-करती (उसमें एकाग्र होती-होती) आनंद से मोक्ष को साधती है।

[आत्मधर्म (हिन्दी), अंक-8 (दिसम्बर-1971), वर्ष-27]

सम्यग्दर्शन आदि गुणों से पूज्य गृहस्थाश्रम

आराध्यन्ते जिनेन्द्रा, गुरुषु च विनतिः, धार्मिकैः प्रीतिरुच्चैः,
पात्रेभ्यो दानमापन्निहतजनकृते, तच्च कारुण्यबुद्धया।
तत्त्वाभ्यासः स्वकीय,-व्रतरतिरमलं, दर्शनं यत्र पूज्यं;
तद्गार्हस्थ्यं बुधाना-मितरदिह पुनः, दुःखदो मोहपाशः ॥13॥

अर्थात् जिस गृहस्थाश्रम में जिनेन्द्र भगवान की पूजा-उपासना की जाती है, निर्ग्रंथ गुरुओं की भक्ति सेवा आदि की जाती है, धर्मात्मा पुरुषों का परस्पर में स्नेह से बर्ताव होता है, मुनि आदि, उत्तमादि पात्रों को दान दिया जाता है, दुःखी-दरिद्रियों को करुणा से दान दिया जाता है, जहाँ पर निरंतर जीवादि तत्त्वों का अभ्यास होता रहता है, अपने-अपने व्रतों में प्रीति रहती है और जहाँ निर्मल सम्यग्दर्शन की प्राप्ति होती है; वह गृहस्थाश्रम विद्वानों के द्वारा पूजनीय होता है; किंतु उससे विपरीत गृहस्थाश्रम, इस संसार में केवल दुःख देनेवाला तथा मोह का जाल है।

श्री पद्मनन्दि-पंचविंशतिका, धर्मोपदेशामृत, गाथा-13

आनंदमय स्वानुभूति

[—जिसमें भगवान आत्मा शुद्धरूप से प्रकाशित होता है]

(श्री समयसार मंगलकलश-1, वीर सं. 2498, मार्गशीर्ष कृष्णा 6)

समयसार का तात्पर्य है शुद्धात्मा की अनुभूति। जिसने अंतर्मुख होकर ऐसी अनुभूति की, उसके अपने आत्मा के असंख्य प्रदेशों में समयसार परमागम के भाव अंकित हो गए... उसकी पर्याय में सिद्ध भगवान पधारे, उसका आत्मा भगवानरूप से अपने में प्रगट हुआ; वह शुद्धात्मा में नमकर साधक हुआ।—ऐसे साधकभावसहित समयसार प्रारंभ होता है।

नमः समयसाराय.... मंगलाचरण में शुद्धात्मा को नमस्कार करते हुए आचार्यदेव कहते हैं कि—अहा, निर्विकल्प स्वानुभूति में प्रकाशमान ऐसे सारभूत शुद्धात्मा को मैं नमन करता हूँ। स्वानुभूति में रागादि परभाव का अभाव आ गया, क्योंकि वे रागादि भाव आत्मा की अनुभूति से बाहर हैं। अपनी स्वानुभूति में आया, उतना ही शुद्धसत्तारूप वस्तु मैं हूँ, उसी में मैं नमता हूँ। बाह्यभाव अनंत काल किए, अब मेरा परिणमन अंतर्मुख हुआ है, इसलिए अपूर्व साधकभाव प्रारंभ हुआ है; और ऐसे भाव द्वारा शुद्ध आत्मा में ही नमता हूँ। उसे नमन किया है अर्थात् उसकी स्वानुभूति की है और अभी विशेष उसी में नमता हूँ; इसलिए प्रतिक्षण मेरा साधकभाव बढ़ता जाता है। ऐसे अपूर्व भाव सहित इस समयसार का मंगल प्रारंभ होता है।

यह सत्रहवीं बार के प्रवचन प्रारंभ करते हुए पूज्य स्वामीजी परम उल्लासपूर्वक कहते हैं कि—अहा, सिद्ध भगवंत तो भावकर्म-द्रव्यकर्म-नोकर्म रहित ऐसे शुद्ध आत्मा हैं, इसलिए वे 'समयसार' हैं, और यह मेरा आत्मा भी परमार्थतः भावकर्म-द्रव्यकर्म-नोकर्म रहित शुद्ध है; स्वानुभूति द्वारा ऐसे शुद्ध आत्मा को लक्ष्य में लेकर उसी को मैं नमता हूँ। मेरा शुद्ध

आत्मद्रव्य मेरी स्वानुभूतिरूप पर्याय ही प्रकाशमान है; स्वानुभूति से भिन्न अन्य कोई साधन नहीं है।

स्वानुभूति से प्रगट हुआ आत्मा कैसा है ?—तो कहते हैं चित्स्वभाव है। मैं स्वयं चैतन्यस्वभाव हूँ, चैतन्यसत्तारूप वस्तु मैं ही हूँ। शुद्ध आत्मा वह द्रव्य, चित्स्वभाव उसका गुण, स्वानुभूति वह पर्याय;—इस प्रकार शुद्ध समयसार में द्रव्य-गुण-पर्याय तीनों का समावेश हो गया। ऐसे शुद्ध आत्मा को लक्षगत करके उसे मैं नमता हूँ, स्वसन्मुख होकर आनंदसहित होकर आत्मानुभूति करता हूँ। ऐसी स्वानुभूति, वह मोक्षमार्ग है; उसमें संवर-निर्जरा आये और आस्रव-बंध का अभाव हुआ। शुद्ध आत्मा की ऐसी स्वानुभूति तो अनंत गुण के निर्मलभावों से भरी हुई महा गंभीर है; उसमें आनंद की मुख्यता है। स्वानुभूति में स्वयं अपने को प्रत्यक्ष होता है। ऐसी अपूर्व स्वानुभूति ही इस समयसार परमागम का तात्पर्य है। जिसने ऐसी अनुभूति की, उस आत्मा के असंख्य प्रदेश में समयसार परमागम के भाव अंकित हो गए; वह आत्मा स्वयं भावश्रुतरूप परिणमित हुआ; उसकी पर्याय ने अंतर्मुख होकर अपने को पूर्ण भगवानरूप से प्रसिद्ध किया।

देखो, यह अमृतचंद्राचार्यदेव का मंगलाचरण! उन्होंने तो इस पंचम काल में कुन्दकुन्दप्रभु के गणधर जैसा कार्य किया है।

आत्मा अपने ही ज्ञान द्वारा, स्वसंवेदन प्रत्यक्षरूप से स्वयं अपने को जानता है; स्वयं अपने को जानने में कोई अन्य—राग या इन्द्रियाँ सहायक नहीं हैं। मात्र परोक्षज्ञान द्वारा, इन्द्रियज्ञान द्वारा आत्मा ज्ञात नहीं होता; स्वानुभूति में ही आत्मा स्वयं अपने को परम-आनंद-सहित प्रत्यक्ष होता है। ऐसी अनुभूति की गंभीर महिमा की क्या बात! इस अनुभूति में राग का समावेश नहीं होता; उसमें पूर्ण शुद्ध आत्मा प्रकाशित होती है, परंतु विकल्प का तो उसमें नाम-निशान भी नहीं है। जिन किन्हीं जीवों ने आत्मा की साधना की है, उन्होंने ऐसी स्वानुभूति की क्रिया द्वारा ही साधना की है; इसलिए तुम भी ऐसी स्वानुभूति के लक्ष्य से ही समयसार का श्रवण करना।

सुनते समय राग पर लक्ष मत देना, विकल्प पर जोर मत देना, परंतु जो शुद्ध आत्मा कहा जा रहा है, उसे लक्ष्य में लेकर उस पर जोर देने से तुम्हें भी अपूर्व आनंद सहित स्वानुभूति होगी। ऐसी स्वानुभूति हुई, वह अपूर्व मंगल है।

आत्मा ही ऐसी सारभूत वस्तु है कि स्वयं अपने को जानने से महान सुख होता है। आत्मा से भिन्न ऐसी कोई सारभूत वस्तु नहीं है कि जिसे जानने से जीव को सुख हो। ज्ञाता स्वभावी आत्मा स्वयं सुखरूप है; इसलिए स्वयं अपने को जानते ही परम सुख होता है।

ऐसा सारभूत शुद्ध आत्मा मुझे अपनी स्वानुभूति द्वारा ही ज्ञात होता है। ऐसे आनंदमय आत्मा के सिवा अन्य सब मेरी स्वानुभूति से बाहर है। जितना स्वानुभूति में समाया है, उतना ही मेरा शुद्ध आत्मा है, वही समयसार है, उसी को मैं नमन करता हूँ। रागादि परभावों से मेरी स्वानुभूति बाहर है, उन बाह्यभावों द्वारा आत्मा ज्ञात नहीं होता, अनुभव में नहीं आता।

स्वानुभूतिगम्य ऐसा आत्मा ही जगत में सबका भूप है; जगत के सर्व पदार्थों का राजा, सबसे श्रेष्ठ महान सुंदर यह चिदानंद आत्मा स्वयं ही है। हे जीवो! ऐसे अपने आत्मा को तुम स्वानुभूति द्वारा जानो; उसे जानने से महान आनंद का वेदन होगा।

भाई, जगत के बाह्य पदार्थों को तो अनादि काल से इन्द्रियज्ञान द्वारा तूने जाना, परंतु तुझे किंचित् सुख नहीं मिला, इसलिए पर को जाननेवाला इन्द्रियज्ञान तो निःसार है; सारभूत ऐसे अपने आत्मा को अतीन्द्रिय अनुभूति द्वारा जानते ही तुझे किसी अपूर्व अतीन्द्रिय सुख का अनुभव होगा।

अरे, यह चैतन्यतत्त्व परम गंभीर महिमावंत है, इसके समक्ष जगत के बाह्य ज्ञातृत्व का क्या मूल्य? भाई! उसकी महिमा छोड़ और अपने उपयोग को आत्मा में लगाकर उसकी परम महिमा कर।—वही मोक्षमार्ग का प्रारंभ है।

हे जीव! तूने सब जाना, परंतु मात्र एक आत्मा को नहीं जाना, इसलिए तुझे किंचित् सुख नहीं हुआ। जाननेवाला तू स्वयं है, सुख तुझमें स्वय में है; उसे जाने बिना सुख कहाँ से होगा? और स्वतत्त्व को नहीं जाना, इसलिए

पर को जानते हुए उसमें अपनत्व माना, उसमें सुख माना, इससे संसार-भ्रमण करके दु:खी हुआ। जगत से भिन्न और जगत का शिरोमणि, जगत में सर्वश्रेष्ठ, ऐसे निजात्मा को जानते ही अनंत गुण का सम्यक्भाव विकसित होकर अनंत शांति का अनुभव होता है।—ऐसे अपूर्व मंगलभावसहित यह समयसार प्रारंभ होता है—साधकभाव की शुरुआत होती है।

[आत्मधर्म (हिन्दी), अंक-8 (दिसम्बर-1971), वर्ष-27]

यथार्थ पुरुषार्थ कभी निष्फल नहीं जाता

जीव अंतर के सच्चे अभ्यास द्वारा प्रयत्न करे तो उत्कृष्ट छह महीने में अवश्य आत्मा का अनुभव और सम्यग्दर्शन हो जाए—यह सुनकर एक व्यक्ति ने पूछा कि हम पुरुषार्थ तो बहुत करते हैं परंतु सम्यग्दर्शन नहीं होता!

उत्तर में गुरुदेव ने कहा कि अरे भाई! ऐसा नहीं हो सकता कि सम्यक्त्व के हेतु यथार्थ पुरुषार्थ करे और सम्यक्त्व न हो। कारण के अनुसार कार्य होता ही है—ऐसी कारण-कार्य की संधि है। कार्य प्रगट नहीं होता तो ऐसा मान कि तेरे कारण में ही कहीं भूल है। तेरा पुरुषार्थ कहीं राग की रुचि में रुका है। यदि स्वभाव की ओर के पुरुषार्थ की धारा प्रारंभ हो तो अंतर्मुहूर्त में अवश्य निर्विकल्प अनुभवसहित सम्यग्दर्शन हो।

स्वभाव का प्रयत्न न करके राग का प्रयत्न करे और कहे कि हम बहुत प्रयत्न करते हैं, तथापि सम्यक्त्व नहीं होता, तो उसे कारण-कार्य के मेल की खबर नहीं है। कारण दे राग का और कार्य माँगे वीतराग स्वभाव का तो कहाँ से मिलेगा? प्रयत्न करे पराश्रय का और कार्य चाहे स्वाश्रित स्वभाव का, यह कैसे बने! भाई! यदि तू सम्यक्त्व के योग्य कारण दे तो सम्यग्दर्शनरूप कार्य अवश्य प्रगट होगा। इसके बिना अन्य लाखों कारणों का चाहे जितने काल तक सेवन करता रहे, तथापि उनसे सम्यक्त्वरूपी कार्य प्रगट नहीं हो सकता। इसलिए सम्यक्त्व के सच्चे पुरुषार्थ को समझ और यथार्थ कारण-कार्य का मेल समझकर पुरुषार्थ कर तो तेरा कार्य प्रगट हो। यथार्थ पुरुषार्थ कभी निष्फल नहीं जाता।

समयसार का श्रवण करने से आनंद का द्वार खुल जाएगा

[श्री समयसार, कलश-3 पर पूज्य स्वामीजी का प्रवचन]

(मार्गशीर्ष कृष्णा 10, वीर सं. 2498)

आचार्यदेव कहते हैं कि—इस समयसार की टीका द्वारा अनुभूति अत्यंत शुद्ध होओ! ...इसलिए हे भव्य श्रोता! इस समयसार के श्रवण से तेरी परिणति भी शुद्ध होगी-ऐसा वचन है; लेकिन किस प्रकार श्रवण करना? वह यहाँ बतलाते हैं:—हम जो शुद्धात्मा बतलाना चाहते हैं, उस पर लक्ष का जोर देना, श्रवण के विकल्प पर जोर मत देना। इस प्रकार उपयोग में शुद्धात्मा का मंथन करते-करते तुझे अवश्य शुद्धात्मा की अनुभूति होगी... तेरा मोह नष्ट हो जाएगा और आनंद का द्वार खुल जाएगा।

* समयसार की टीका करते हुए अमृतचंद्र स्वामी कहते हैं कि—इस समयसार की व्याख्या से अर्थात् समयसार में शुद्धात्मा के जो भाव कहे हैं, उन भावों के ज्ञान में बारंबार मंथन से, आत्मानुभूति शुद्ध होती है।
* देखो, इसमें टीका रचते समय शास्त्र की ओर का जो शुभ विकल्प है, उस विकल्प की मुख्यता नहीं है, परंतु उसी समय विकल्प से भिन्न जो ज्ञान शुद्धात्मा की ओर कार्य कर रहा है, उस ज्ञान के बल से परिणति की शुद्धता होती है। विकल्प का जोर नहीं, ज्ञान का ही जोर है। विकल्प के जोर से शुद्धि होना माने, उसे तो समयसार की खबर ही नहीं है। भाई, समयसार का अभ्यास अर्थात् शुद्धात्मा की भावना; समयसार तो रागादि से भिन्न शुद्ध एकत्वरूप आत्मा बतलाकर उसकी भावना करने को कहता है और ज्ञान को अंतर्मुख करके शुद्धात्मा की ऐसी भावना, वही अनुभूति की शुद्धता का कारण है।
* 'समयसार' में हमारा जोर विकल्प पर नहीं है, विकल्प से पार हमारा जो एक ज्ञायकभाव, वही हम हैं, उसी में हमारा जोर है। जो श्रोताजन

ऐसे ज्ञायकस्वभाव की ओर लक्ष देकर समयसार का श्रवण करेंगे, उनकी परिणति भी शुद्ध होगी ही—ऐसा वचन है। इस प्रकार वक्ता और श्रोता दोनों के मोहनाश के लिये इस समयसार की रचना है। इसलिए हे भाई! तू विकल्प में खड़े रहकर मत सुनना; बीच में विकल्प आये, उस पर जोर मत देना, परंतु समयसार के वाच्यरूप जो शुद्धात्मभाव हम कहना चाहते हैं, उस 'भाव' को लक्ष्य में लेकर उस पर उपयोग का जोर देने से तेरा मोह नष्ट हो जाएगा और तेरे आनंद का द्वार खुल जाएगा।

* हे भव्य! इस समयसार का श्रवण करते हुए तू अंतर में शुद्धात्मा के ही लक्ष का मंथन करते रहना, उसका मंथन करते-करते परिणति भी शुद्ध हो जाएगी। आचार्यदेव कहते हैं कि—समयसार की टीका रचते समय हमारी परिणति में तो अपने परमात्मतत्त्व का ही मंथन चलता रहता है; परिणति अंतर में शुद्धस्वरूप के साथ केलि करती है; विकल्प है, उसमें हमारी परिणति का जोर नहीं है। पहले से ही विकल्प और चेतना की भिन्नता का जोर है; इसलिए विकल्प के समय भी ज्ञान में तो ऐसा आता है कि मैं विकल्प से भिन्न चैतन्यभाव हूँ; इसलिए ज्ञानपरिणति विकल्प से भिन्न होकर चैतन्य स्वभावोन्मुख होती जाती है और शुद्ध होती जाती है। ऐसा इस समयसार के मंथन का फल है।

* आचार्य भगवान कहते हैं कि इस समयसार द्वारा हम शुद्ध आत्मा बतलाऐंगे। जिस शुद्धात्मा का हमने अनुभव किया है, वह हम इस समयसार में प्रगट करेंगे; इसलिए तुम भी शुद्धात्मा के ही लक्ष्य से समयसार को सुनना। अन्य सबसे लक्ष्य हटाकर अंतर में शुद्धात्मा में ही लक्ष्य को स्थिर करना... ऐसा करने से परमानंद का मार्ग तुम्हें अपने में दिखाई देगा... शुद्धात्मा की अनुभूति होगी और मोह का नाश हो जाएगा।

[आत्मधर्म (हिन्दी), अंक-8 (दिसम्बर-1971), वर्ष-27]

सम्यग्दर्शन के आठ अंग की कथा

सम्यक्तयुत आचार ही संसार में एक सार है,
जिनने किया आचरण उनको नमन सौ-सौ बार है।
उनके गुणों के कथन से गुण ग्रहण करना चाहिए,
अरु पापियों का हाल सुनकर पाप तजना चाहिए।

(4) अमूढ़दृष्टि-अंग में प्रसिद्ध रेवतीरानी की कथा

[पहली नि:शंक अंग में प्रसिद्ध अंजनचोर की, दूसरी नि:कांक्ष अंग में प्रसिद्ध सती अनंतमती की कथा और तीसरी निर्विचिकित्सा अंग में प्रसिद्ध उदायन राजा की कथा आपने पढ़ी; अब चौथी कथा आप यहाँ पढ़ेंगे:—]

इस भरतक्षेत्र के बीच में विजयार्द्ध-पर्वत स्थित है, उस पर विद्याधर मनुष्य रहते हैं, उन विद्याधरों के राजा चंद्रप्रभु का मन संसार से विरक्त था, वे राज्यभार अपने पुत्र को सौंपकर तीर्थयात्रा करने के लिए निकल पड़े। वे कुछ समय दक्षिण मथुरा में रहे, वहाँ के प्रसिद्ध तीर्थों और रत्नों के जिनबिम्बों से शोभायमान जिनालय देखकर उन्हें आनंद हुआ। उस समय मथुरा में गुप्ताचार्य नाम के महा मुनिराज विराजमान थे, वे विशिष्ट ज्ञान के धारी थे तथा मोक्षमार्ग का उत्तम उपदेश देते थे। चंद्रराजा ने कुछ दिनों तक मुनिराज का उपदेश श्रवण किया तथा भक्तिपूर्वक उनकी सेवा की।

कुछ समय बाद उन्होंने उत्तर मथुरानगरी की यात्रा को जाने का विचार किया—कि जहाँ से जम्बूस्वामी मोक्ष को प्राप्त हुए हैं तथा जहाँ अनेक मुनिराज विराजमान थे; उनमें भव्यसेन नाम के मुनि भी प्रसिद्ध थे। उस समय मथुरा में वरुण राजा राज्य करते थे, उनकी रानी का नाम रेवतीदेवी था।

चंद्रराजा ने मथुरा जाने की अपनी इच्छा गुप्ताचार्य के समक्ष प्रगट की

और आज्ञा माँगी तथा वहाँ के संघ को कोई संदेश ले जाने के लिए पूछा—

तब श्री आचार्यदेव ने सम्यक्त्व की दृढ़ता का उपदेश देते हुए कहा कि—आत्मा का सच्चा स्वरूप समझनेवाले सम्यग्दृष्टि जीव वीतराग अरिहंतदेव के अतिरिक्त अन्य किसी को देव नहीं मानते। जो देव न हो, उसे देव मानना, वह देवमूढ़ता है। ऐसी मूढ़ता धर्मी को नहीं होती। मिथ्यामत के देवादिक बाह्य में चाहे जितने सुंदर दिखते हों, ब्रह्मा-विष्णु या शंकर के समान हों—तथापि धर्मीजीव उनके प्रति आकर्षित नहीं होते। मथुरा की राजरानी रेवतीदेवी ऐसे सम्यक्त्व को धारण करनेवाली हैं तथा जैनधर्म की श्रद्धा वे बहुत दृढ़ हैं, उन्हें धर्मबुद्धि का आशीर्वाद कहना तथा वहाँ विराजमान सुरत मुनि—कि जिनका चित्त रत्नत्रय में मग्न है—उन्हें वात्सल्यपूर्वक नमस्कार कहना।

— इस प्रकार आचार्यदेव ने सुरतमुनिराज को तथा रेवतीरानी को संदेश भेजा परंतु भव्यसेन मुनि को तो याद भी न किया; इससे राजा को आश्चर्य हुआ, और पुन: आचार्य महाराज से पूछा कि अन्य किसी से कुछ कहना है ? परंतु आचार्य ने इससे अधिक कुछ भी नहीं कहा।

इससे चंद्रराजा को ऐसा लगा कि क्या आचार्यदेव भव्यसेन मुनि को भूल गए होंगे ?— नहीं, नहीं, वे भूल तो नहीं हैं, क्योंकि वे विशिष्ट ज्ञान के धारक हैं, इसलिए उनकी इस आज्ञा में अवश्य ही कोई रहस्य होगा। ठीक, जो होगा वह वहाँ प्रत्यक्ष दिखाई देगा—इस प्रकार समाधान करके, आचार्यदेव के चरणों में नमस्कार करके वे मथुरा की ओर चल दिए।

मथुरा में आकर सर्व प्रथम उन्होंने सुरतमुनिराज के दर्शन किए, वे अत्यंत उपशांत और शुद्धरत्नत्रय के पालन करनेवाले थे, चंद्रराजा ने उनसे गुप्ताचार्य का संदेश कहा तथा उनकी ओर से नमस्कार किया।

चंद्रराजा की बात सुनकर सुरतमुनिराज ने प्रसन्नता व्यक्त की और स्वयं भी विनयपूर्वक हाथ जोड़कर श्री गुप्तआचार्य को परोक्ष नमस्कार किया।

एक-दूसरे के प्रति मुनियों का ऐसा वात्सल्य देखकर राजा अत्यंत प्रसन्न हुआ। सुरतमुनिराज ने कहा : हे वत्स! वात्सल्य द्वारा धर्म शोभायमान होता है। धन्य है उन रत्नत्रय के धारक आचार्यदेव को—कि जिन्होंने इतनी दूर से भी साधर्मी के रूप हमें याद किया। शास्त्र में सच कहा है कि—

ये कुर्वन्ति सुवात्सल्यं भव्या धर्मानुरागतः।
साधर्मिकेषु तेषां हि सफलं जन्म भूतले॥

अहा! धर्म के प्रेम द्वारा जो भव्य जीव साधर्मीजनों के प्रत्येक उत्तम वात्सल्य करते हैं, उनका जन्म जगत में सफल है।

प्रसन्नचित्त से भावपूर्वक बारंबार उन मुनिराज को नमस्कार करके राजा विदा हुए तथा भव्यसेन मुनिराज के पास गए... उन्हें बहुत शास्त्रज्ञान था और लोगों में वे बहुत प्रसिद्ध थे। राजा काफी समय तक उनके साथ रहे परंतु उन मुनिराज ने न तो आचार्यसंघ का कोई कुशल-समाचार पूछा और न कोई उत्तम धर्माचर्चा की। मुनि के योग्य व्यवहार-आचार भी उनके ठीक न थे। शास्त्रज्ञान होने पर भी शास्त्रों के अनुसार उनका आचरण न था। मुनि को न करनेयोग्य प्रवृत्ति वे करते थे। यह सब प्रत्यक्ष देखने से राजा को मालूम हो गया कि भव्यसेन मुनि कितने भी प्रसिद्ध क्यों न हों, तथापि वे सच्चे मुनि नहीं।—तो फिर गुप्ताचार्य उनको क्यों याद करते। वास्तव में, उन विचक्षण आचार्यभगवान ने योग्य ही किया।

इस प्रकार सुरतिमुनिराज तथा भव्यसेनमुनि को तो प्रत्यक्ष देखकर परीक्षा की। अब रेवती रानी को आचार्यमहाराज ने धर्मवृद्धि का आशीर्वाद भेजा है, इसलिए उनकी भी परीक्षा करूँ—ऐसा राजा को विचार आया।

✽ ✽ ✽

दूसरे दिन मथुरा नगरी के उद्यान में अचानक साक्षात् ब्रह्माजी पधारे हैं, नगरजनों की भीड़ उनके दर्शन को उमड़ पड़ी.... तथा समस्त नगर में चर्चा होने लगी कि अहा, सृष्टि का सर्जन करनेवाले ब्रह्माजी साक्षात् पधारे हैं... वे कहते हैं कि—मैं इस सृष्टि का सर्जक हूँ और दर्शन देने आया हूँ।

मूढ़ लोगों का तो क्या ही कहना ? अधिकांश लोग तो ब्रह्माजी के दर्शन कर आये। प्रसिद्ध भव्यसेन मुनि भी कौतुहलवश वहाँ हो आये, सिर्फ न गए सुरति-मुनि और न गई रेवतीरानी।

जब राजा ने साक्षात् ब्रह्मा की बात की, तब महारानी रेवती ने नि:शंकरूप से कहा : महाराज! यह ब्रह्मा हो नहीं सकते, किसी मायाचारी ने यह इन्द्रजाल रचा है, क्योंकि कोई ब्रह्मा इस सृष्टि के सर्जक हैं ही नहीं। ब्रह्मा तो अपना ज्ञानस्वरूप आत्मा है अथवा भरतक्षेत्र में भगवान ऋषभदेव ने मोक्षमार्ग की रचना की है, इसलिए उन्हें ब्रह्मा कहा जाता है—इसके अतिरिक्त कोई ब्रह्मा नहीं है, जिसको मैं वंदन करूँ।

दूसरा दिन हुआ और मथुरा नगरी में दूसरे दरवाजे पर नागशय्यासहित साक्षात् विष्णु भगवान पधारे, जिन्हें अनेक शृंगार और चार हाथों में शस्त्र थे। लोगों में तो फिर हलचल मच गई, बिना विचारे लोग दौड़ने लगे और कहने लगे कि अहा! मथुरानगरी का महाभाग्योदय हुआ है कि कल साक्षात् ब्रह्माजी ने दर्शन दिये और आज विष्णुभगवान पधारे हैं।

राजा को ऐसा लगा कि आज जरूर रानी चलेगी, इसलिए उन्होंने उमंगपूर्वक रानी से वह बात की—परंतु रेवती जिसका नाम, वीतरागदेव के चरण में लगा हुआ उसका चित्त जरा भी चलायमान नहीं हुआ। श्री कृष्ण आदि नौ विष्णु (अर्थात् वासुदेव) होते हैं, और वे नौ तो चौथे काल में हो चुके हैं। दसवें विष्णुनारायण कभी हो नहीं सकते, इसलिए जरूर यह सब बनावटी है, क्योंकि जिनवाणी कभी मिथ्या होती नहीं। इस तरह जिनवाणी में दृढ़ श्रद्धापूर्वक, अमूढ़दृष्टि अंग से वह किंचित् विचलित नहीं हुई।

तीसरे दिन फिर एक नई बात उड़ी कि ब्रह्मा और विष्णु के पश्चात् आज तो पार्वतीदेवी सहित जटाधारी शंकर महादेव पधारे हैं। गाँव के लोग उनके दर्शन को उमड़ पड़े। कोई भक्तिवश गए, तो कोई कौतूहलवश गए, परंतु जिनके रोम-रोम में वीतराग देव का निवास था ऐसी रेवतीरानी का तो रोम भी नहीं हिला, उन्हें कोई आश्चर्य न हुआ, उन्हें तो लोगों पर दया आई

कि अरेरे ! परम वीतराग सर्वज्ञदेव मोक्षमार्ग को दिखानेवाले भगवान, उन्हें भूलकर मूढ़ता से लोग इस इन्द्रजाल में कैसे फँस रहे हैं ! वास्तव में भगवान अरिहंतदेव का मार्ग प्राप्त होना जीवों को बहुत ही दुर्लभ है।

अब चौथे दिन मथुरा नगरी में तीर्थंकर भगवान पधारे... अद्‌भुत समवसरण की रचना, गंधकुटी जैसा दृश्य और उसमें चतुर्मुखसहित तीर्थंकर भगवान ! लोग तो फिर से दर्शन करने के लिए दौड़ पड़े। राजा को लगा कि अबकी बार तो तीर्थंकर भगवान पधारे हैं, इसलिए रेवतीदेवी जरूर साथ आएगी।

परंतु रेवतीरानी ने कहा कि अरे महाराज ! इस समय इस पंचम काल में तीर्थंकर कैसे ? भगवान ने इस भरतक्षेत्र में एक चौबीसी में चौबीस ही तीर्थंकर होना कहा है और ऋषभदेव से लेकर महावीरस्वामी तक 24 तीर्थंकर होकर मोक्ष को पधार चुके हैं। यह पच्चीसवें तीर्थंकर कहाँ से आये ? यह तो किसी मायावी का मायाजाल है। मूढ़ लोग देव के स्वरूप का विचार भी नहीं करते और यों ही दौड़े चले जाते हैं।

बस, परीक्षा हो चुकी... विद्याधर राजा को विश्वास हो गया कि इन रेवतीरानी की जो प्रशंसा गुप्ताचार्य ने की है, वह योग्य ही है, यह सम्यक्त्व के सर्व अंगों से शोभायमान हैं। क्या पवन से भी मेरुपर्वत हिलता होगा ? नहीं; उसी प्रकार सम्यग्दर्शन में मेरु समान निष्कंप सम्यग्दृष्टि जीव कुधर्मरूपी पवन द्वारा किंचित् मात्र चलायमान नहीं होते, उन्हें देव-गुरु-धर्म संबंधी मूढ़ता नहीं होती, वे यथार्थ पहिचान करके सच्चे वीतरागी देव-गुरु-धर्म को ही नमन करते हैं।

रेवतीरानी की ऐसी दृढ़ धर्मश्रद्धा देखकर विद्याधर को अत्यंत प्रसन्नता हुई, वास्तविक स्वरूप में प्रगट होकर उसने कहा—हे माता ! मुझे क्षमा करो। मैंने ही चार दिन तक ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि का इन्द्रजाल रचा था, गुप्ताचार्यदेव ने आपके सम्यक्त्व की प्रशंसा की, इससे आपकी परीक्षा करने के लिए ही मैंने यह सब किया था। अहा ! धन्य है आपकी श्रद्धा को ! धन्य

है आपकी अमूढ़दृष्टि को! हे माता! आपके सम्यक्त्व की प्रशंसापूर्वक श्रीगुप्ताचार्य भगवान ने आपको धर्मवृद्धि का आशीर्वाद भेजा है।

मुनिराज के आशीर्वाद की बात सुनते ही रेवतीरानी को अपार हर्ष हुआ... हर्ष-विभोर होकर उन्होंने उस आशीर्वाद को स्वीकार किया और जिस दिशा में मुनिराज विराजते थे, उस ओर सात डग चलकर परम भक्तिपूर्वक मस्तक नमाकर मुनिराज को परोक्ष नमस्कार किया।

विद्याधर राजा ने रेवतीमाता का बड़ा सन्मान किया और उनकी प्रशंसा करके सारी मथुरा नगरी में उनकी महिमा फैला दी। राजमाता की ऐसी दृढ़ श्रद्धा देखकर और जिनमार्ग की ऐसी महिमा देखकर मथुरानगरी के कितने ही जीव कुमार्ग को छोड़कर जैनधर्म के भक्त बने और अनके जीवों की श्रद्धा दृढ़ हुई। इस प्रकार जैनधर्म की महान प्रभावना हुई।

[बन्धुओं, यह कथा हमसे ऐसा कहती है कि वीतराग परमात्मा अरिहंतदेव का सच्चा स्वरूप पहिचानो और उनके अतिरिक्त अन्य किसी भी देव को—साक्षात् ब्रह्मा-विष्णु-शंकर समान दिखते हों, तथापि उन्हें नमन न करो, जिनवचन से विरुद्ध किसी बात को न मानो। भले ही सारा जगत अन्यथा माने और तुम अकेले रह जाओ, तथापि जिनमार्ग की श्रद्धा नहीं छोड़ना।] [आत्मधर्म (हिन्दी), अंक-8 (दिसम्बर-1971), वर्ष-27]

आनंदधाम में आ!

रे जीव! यह किंचित् दु:ख भी तुझसे सहन नहीं होता तो इसकी अपेक्षा महान दु:ख जिनसे भोगना पड़ते हैं—ऐसे अज्ञानमय विपरीत भावों का सेवन तू क्यों कर रहा है।

यदि तुझे दु:ख का सच्चा भय हो तो उस दु:ख के कारणरूप ऐसे मिथ्यात्वादि विपरीतभावों को तू शीघ्र छोड़ और आनंदधाम ऐसे निजस्वरूप में आ!

भगवान आचार्यदेव
श्री समंतभद्रस्वामी

जैन जगत के महान आचार्य धरसेनाचार्य, गुणधर आचार्य से लगाकर कुन्दकुन्द भगवान, उमास्वामी भगवन्त आदि तक के ऐसे आचार्य हुए हैं, जिन्होंने युगसर्जन किया है। अत: वे युगस्रष्टा आचार्य थे। आपके द्वारा ही अंगपूर्व के विच्छेद होते हुए ज्ञान को, चारों अनुयोगरूप जिनवाणी का मूर्तरूप देने से आज भी श्रुतपरंपरा का प्रवाह चालू रहा। यदि ये दिगंत आचार्य ऐसा प्रयास न करते तो शायद आज हम सब आत्मज्ञान की सच्ची बात कहाँ से प्राप्त करते ? आपके पश्चात्वर्ती आचार्य भगवंतों ने काल दोष से लोगों के ज्ञान की क्षीणता होती देख, आपके ग्रंथों के आधार पर टीका या (परंपरा से प्राप्त ज्ञान द्वारा) मौलिक ग्रंथ की रचना कर श्रुतप्रवाह को अविरतरूप से चालू रखा।

ऐसे आचार्यों में समंतभद्राचार्यदेव सर्व प्रथम आचार्य हैं, जो युगसर्जनकर्ता आचार्यों व पश्चात्वर्ती आचार्यों को जोड़ती कड़ी के रूप में हैं। आप स्तोत्रकाव्य के आद्य रचयिता हैं। आपने अपने जीवनकाल में स्याद्वाद-अनेकांत शासन को जिन अकाट्य न्याय से सिद्ध किया है, वह अक्सर जिनेन्द्र भगवंतों की स्तुति द्वारा ही किया है। आपको भगवान की स्तुति का व्यसन ही हो गया हो, ऐसा आपके साहित्य से प्रतीत होता है।

आपको जन्म दक्षिणभारत के उरगपुर के 'राजाबलिकथे' में उत्कलिका ग्राम में हुआ था, जो प्राय: उरगपुर के अंतर्गत ही रहा होगा। उरगपुर चोल राजाओं की प्राचीन ऐतिहासिक राजधानी थी। जिसे आजकल 'त्रिचनापली'[१] कहते हैं। आप चोल राजवंश के जन्मनाम शांतिवर्मा नामक नाम से अनुमानित किये जाते हैं, जो कि आपके 'स्तुति-विद्या' नामक ग्रंथ के कई काव्यों की नव वलयावली चित्र रचना से प्रतीत होता है। आपका जन्म ई.स. 120 में हुआ हो, ऐसा इतिहासकारों का मानना है।

१. यह कावेरी नदी के तट पर फणिमंडल के अंतर्गत अत्यंत समृद्धशाली नगर माना गया है।

जैन जगत के महान आचार्य धरसेनाचार्य, गुणधर आचार्य से लगाकर कुन्दकुन्द भगवान, उमास्वामी भगवन्त आदि तक के ऐसे आचार्य हुए हैं, जिन्होंने युगसर्जन किया है। अत: वे युगस्रष्टा आचार्य थे। आपके द्वारा ही अंगपूर्व के विच्छेद होते हुए ज्ञान को, चारों अनुयोगरूप जिनवाणी का मूर्तरूप देने से आज भी श्रुतपरंपरा का प्रवाह चालू रहा। यदि ये दिगंत आचार्य ऐसा प्रयास न करते तो शायद आज हम सब आत्मज्ञान की सच्ची बात कहाँ से प्राप्त करते ? आपके पश्चात्वर्ती आचार्य भगवंतों ने काल दोष से लोगों के ज्ञान की क्षीणता होती देख, आपके ग्रंथों के आधार पर टीका या (परंपरा से प्राप्त ज्ञान द्वारा) मौलिक ग्रंथ की रचना कर श्रुतप्रवाह को अविरतरूप से चालू रखा।

ऐसे आचार्यों में समंतभद्राचार्यदेव सर्व प्रथम आचार्य हैं, जो युगसर्जनकर्ता आचार्यों व पश्चात्वर्ती आचार्यों को जोड़ती कड़ी के रूप में हैं। आप स्तोत्रकाव्य के आद्य रचयिता हैं। आपने अपने जीवनकाल में स्याद्वाद-अनेकांत शासन को जिन अकाट्य न्याय से सिद्ध किया है, वह अक्सर जिनेन्द्र भगवंतों की स्तुति द्वारा ही किया है। आपको भगवान की स्तुति का व्यसन ही हो गया हो, ऐसा आपके साहित्य से प्रतीत होता है।

आपको जन्म दक्षिणभारत के उरगपुर के 'राजाबलिकथे' में उत्कलिका ग्राम में हुआ था, जो प्राय: उरगपुर के अंतर्गत ही रहा होगा। उरगपुर चोल राजाओं की प्राचीन ऐतिहासिक राजधानी थी। जिसे आजकल 'त्रिचनापली'[१] कहते हैं। आप चोल राजवंश के जन्मनाम शांतिवर्मा नामक नाम से अनुमानित किये जाते हैं, जो कि आपके 'स्तुति-विद्या' नामक ग्रंथ के कई काव्यों की नव वलयावली चित्र रचना से प्रतीत होता है। आपका जन्म ई.स. 120 में हुआ हो, ऐसा इतिहासकारों का मानना है।

१. यह कावेरी नदी के तट पर फणिमंडल के अंतर्गत अत्यंत समृद्धशाली नगर माना गया है।

आप न्याय-विद्या के महान आचार्य थे। आपने अपने ग्रंथों में पदार्थ का स्वरूप द्रव्य-पर्यायमय, नित्य-अनित्यात्मक, कारण-कार्य स्वरूप, भेदाभेद स्वरूप आदि अनेकरूप से, अनेकांतिक ही है, इसके अलावा अन्य प्रकार से हो

ही नहीं सकता। यह सिद्ध करने में जो गंभीर व गहन न्याय दिए हैं, उसके भाव उन द्वारा रचित ग्रंथों की टीका से ही अति स्पष्ट होते हैं। ऐसा पदार्थ का स्वरूप समझने से ही आत्मकल्याण के मार्ग में, सम्यग्दर्शन के साथ ही, तत्त्वज्ञान की आवश्यकता प्रद्योत होती है; वह चमत्कारिकरूप से अपने ग्रंथों के अंत में आपने बताया है।

जिनशासन के रहस्य—अनेकांत-स्याद्वाद्—को हृदयंगम किया होने से आप जैनधर्म के मर्मज्ञ थे। आपको आपके समय के सारे दर्शनशास्त्रों का तलस्पर्शी ज्ञान था, उसी द्वारा आपने उन दर्शनों की मध्यस्थता पूर्ण परीक्षा ही नहीं, समीक्षा भी की थी।

आपके पश्चात्वर्ती आचार्यों ने आपके विविध गुणों की प्रशंसा की है। उसमें से कुछेक जैसे कि श्री 'आदिपुराण' में आचार्यदेव जिनसेनजी ने आपको 'महान कविवेत्ता' कहकर, श्री वादिराजसूरिजी ने आपको 'काव्यमणियों का पर्वत' कहकर, श्री वादिभसिंह आचार्य ने आपको 'स्याद्वाद की स्वच्छंद-विहारभूमि' कहकर, श्री वर्धमानसूरि ने आपको 'महान कविश्वर, कुवादिविद्या-जय-लब्ध-कीर्ति' और 'सुतर्कशास्त्रामृतसारसागर' कहकर आपके गुणों की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। उस ही भाँति श्री शुभचंद्राचार्यदेव, भट्टारक सकलकीर्तिजी, ब्रह्म अजितजी, कवि दामोदर, श्री वसुनंदी आचार्य, श्री विजयवर्णी ने, श्री अजितसेनाचार्य ने भी आपकी प्रशंसा की है। उस ही भाँति अनेक शिलालेखों में भी आपके विविध गुण-रत्नों की स्तुति कीहै। इस पर से संक्षिप्त में कहें तो आपके परिचयविषयक विशेषण जो उपलब्ध हुए हैं, वे—(1) आचार्य, (2) कवि, (3) वादीराज, (4) पंडित (गमक), (5) दैवेज्ञ (ज्योतिर्विद), (6) भीषक् (वैद्य), (7) मांत्रिक (मंत्रविशेषज्ञ), (8) तांत्रिक (तंत्र विशेषज्ञ), (9) आज्ञासिद्ध, (10) सिद्ध सारस्वत (सरस्वती जिन्हें सिद्ध है।) ऐसे अनेक विशेषण हैं।

आप सफल परीक्षक होने से आपने सर्वज्ञ, वीतराग आप्त प्रभु तक की परीक्षा की। इतना ही नहीं, आप मानो वाद देवता हों, उस तरह आपने विविध स्थान पर बड़े नम्रता से (आडंबर रहितरूप से) वादीयों को अनेकांत-स्याद्वाद

विद्या द्वारा मंत्र-मुग्ध कर वीर प्रभु के शासन को सहस्त्रगुणा वृद्धिंगत किया था। उसमें से पाटलीपुत्र नगर, मालव (मालवा), सिंधु, ठक्क (पंजाब) देश, कांचीपुर (कांजीवरम्) और वैदिश (भेलसा) आदि प्रमुख हैं, अर्थात् आप भारत के पूर्व से पश्चिम व उत्तर से दक्षिण के सभी प्रमुख-प्रमुख स्थानों पर बाद में अग्रेसर सिद्ध हुए—ऐसा इतिहासकारों का मानना है।

इस प्रकार जैन वाङ्मय में आचार्य समंतभद्रजी को, पूर्ण तेजस्वी विद्वान, प्रभावशाली दार्शनिक, महावादविजेता और कवि-वेधा के रूप में स्मरण किया गया है। जैनधर्म और जैनसिद्धांत के मर्मज्ञ विद्वान होने के साथ-साथ तर्क, व्याकरण, छंद, अलंकार एवं काव्य-कोषादि विषयों में आप पूर्णतया निष्णात थे। अपनी अलौकिक प्रतिभा द्वारा आपने तत्कालीन ज्ञान और विज्ञान के प्राय: समस्त विषयों को आत्मसात् कर लिया था। संस्कृत, प्राकृत आदि विभिन्न भाषाओं के भी आप पारंगत विद्वान थे। स्तुतिविद्याग्रंथ से आपके शब्दाधिपत्य

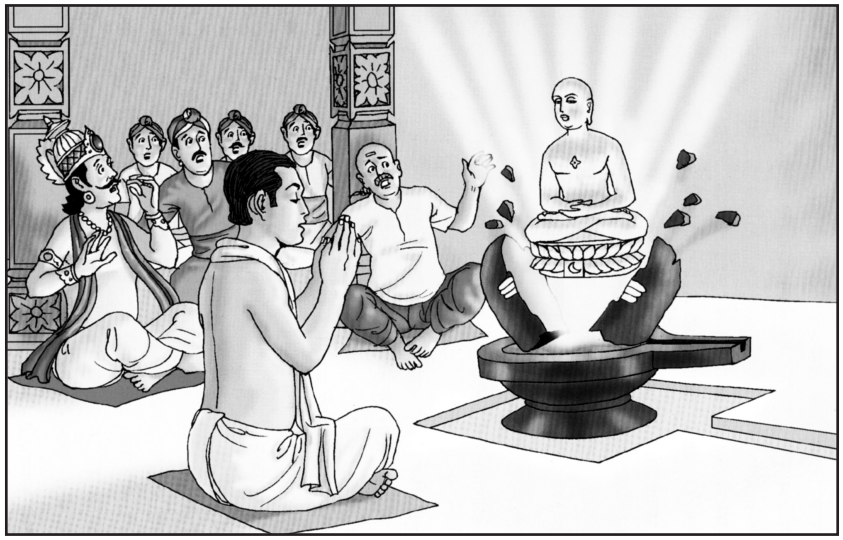

समंतभद्र गृहस्थ वेष में राजा के आग्रह से शिवपिंडी के दर्शन करते हुए स्वयंभूस्तोत्र की रचना करते हैं, चंद्रप्रभ भगवान की स्तुति आने पर शिवलिंग फटकर श्री चंद्रप्रभ भगवान का जिनबिम्ब प्रकट होता है।

पर भी पूरा प्रकाश पड़ता है। आपके भावी तीर्थंकर होने के प्रमाण भी मिलते हैं।

दक्षिण भारत में उच्च कोटि के संस्कृत-ज्ञान को, प्रोत्साहन और प्रसारण

देनेवालों में आचार्यदेव समंतभद्र का नाम उल्लेखनीय है। आप ऐसे युगसंस्थापक हैं, जिन्होंने जैन विद्या के क्षेत्र में एक नया आलोक विकीर्ण किया है। अपने समय के प्रचलित नैरात्म्यवाद, शून्यवाद, क्षणिकवाद, ब्रह्माद्वैतवाद, पुरुष एवं प्रकृतिवाद आदि की समीक्षाकर स्याद्वाद-सिद्धांत की प्रतिष्ठा की है।

आपने कांची में गृहस्थधर्म का त्यागकर भगवती जिन-दीक्षा धारण की थी।

प्रसिद्ध कथानुसार ई.स. 138 में मुनिदीक्षा ग्रहण करने के पश्चात् जब वे मणुवकहल्ली स्थान में विचरण कर रहे थे, कि उन्हें 'भस्मक व्याधि' नामक भयानक रोग हो गया, जिससे दिगम्बर मुनिपद का निर्वाह उन्हें अशक्य प्रतीत हुआ। अतएव उन्होंने गुरु से समाधिमरण धारण करने की अनुमति माँगी। गुरु ने भव्य शिष्य को आदेश देते हुए कहा—'आपसे धर्म और साहित्य की बहुत उन्नति होगी, अतः आप दीक्षा छोड़कर रोग-शमन का उपाय करें। रोग दूर होने पर पुनः दीक्षा ग्रहण कर लें।' गुरु के इस आदेशानुसार समंतभद्र रोगोपचार हेतु दिगम्बर मुनिपद को छोड़कर संयासी बन गए और इधर-उधर विचरण करने लगे। पश्चात् वाराणसी में शिवकोटि राजा के भीमलिंग नामक शिवालय में जाकर राजा को आशीर्वाद दिया और शिवजी को अर्पण किये जानेवाले नैवेद्य को शिवजी को ही खिला देने की घोषणा की।

राजा इससे प्रसन्न हुआ और शिवजी को नैवेद्य भक्षण कराने की अनुमति उन्हें दे दी। समंतभद्र अनुमति प्राप्त कर शिवालय के किवाड़ बंद कर उस नैवेद्य को स्वयं ही भक्षण कर रोग को शांत करने लगे। शनैः शनैः उनकी व्याधि उपशमन होने लगी और भोग की सामग्री बचने लगी। राजा को इस पर संदेह हुआ। अतः गुप्तरूप से उसने शिवालय के भीतर कुछ व्यक्तियों को छिपा दिया। समंतभद्र को नैवेद्य का भक्षण करते हुए छिपे व्यक्तियों ने देख लिया।

राजा ने श्री समंतभद्र से शिवपिण्ड को नमस्कार करने के लिये कहा। तब उन्होंने इस बारे में आनाकानी करते हुए कहा, कि यह शिवलिंग मेरा नमस्कार सहन नहीं कर सकेगा। पश्चात् राजा शिवकोटि के डराने पर समंतभद्र ने इसे उपसर्ग समझकर चतुर्विंशति तीर्थंकरों की 'स्वयंभू-स्तोत्र' नामक स्तुति आरंभ की। वे एकाग्रचित्त से स्तवन करते रहे। जब वे चंद्रप्रभस्वामी की स्तुति कर रहे

उपदेश सिद्धांत रत्नमाला

हिंसक पर्वों के स्थापकों की निंदा

णामं पि तस्स असुहं, जेण णिद्दिट्ठाइं मिच्छपव्वाइ।
जेसिं अणुसंगाओ, धम्मीण वि होइ पावमई॥27॥

अर्थ : जिन्होंने अधिक जलादि की हिंसा के कारण रूप तथा कन्दमूल आदि का भक्षण और रात्रि भक्षण के पोषक मिथ्यात्व के पर्वों की स्थापना की उनका तो नाम भी लेना पाप बंध का कारण है क्योंकि उन मिथ्या पर्वों के प्रसंग से अनेक धर्मात्माओं की भी पापबुद्धि हो जाती है अर्थात् धर्मात्मा भी देखादेखी चंचल बुद्धि हो जाते हैं।

मध्यम गुण-दोष ही संगति से होते हैं

मज्झट्ठिइ पुण ऐसा, अणुसंगेण हवंति गुणदोसा।
उक्किट्ठ पुण्ण पावा, अणुसंगेण ण घिप्पंति॥28॥

भावार्थ : जो जीव तीव्र मिथ्यादृष्टि है उसे धर्म का निमित्त मिले तो भी उसकी धर्मबुद्धि नहीं होती, इसी प्रकार जो दृढ़ श्रद्धान है उसे पाप का निमित्त मिलने पर भी पापबुद्धि नहीं होती किंतु भोले अर्थात् मध्यम परिणामवाले जीवों को जैसा निमित्त मिले वैसे परिणाम हो जाते हैं।

उत्कृष्ट पुण्य-पाप संगति से नहीं होते

अइसय पावी जीवा, धम्मिय पव्वेसु ते वि पावरया।
ण चलंति सुद्ध धम्मा, धण्णा किवि पाव पव्वेसु॥29॥

अर्थ :- जो अत्यंत पापी जीव हैं, वे धर्म पर्वों में भी पाप में रत होते हैं और जो शुद्ध धर्मात्मा हैं अर्थात् निर्मल श्रद्धानी हैं, वे कसी भी पाप पर्व में धर्म से चलित नहीं होते।

धन के दो प्रकार

लच्छी वि हवइ दुविहा, एगा पुरिसाण खवइ गुणरिद्धिं।
एगाय उल्लसंती, अपुण्ण-पुण्णप्पभावाओ॥30॥

अर्थ :- लक्ष्मी भी दो प्रकार की होती है—एक तो विषय भोगों में लगने से पाप के योग से जीव की सम्यक्त्वादि गुण रूपी ऋद्धियों का नाश करती है और

एक लक्ष्मी ऐसी है जो दान-पूजादि पुण्य कार्यों में लगने से पुण्य के योग से सम्यक्त्वादि गुणरूप पवित्र भावों को उल्लसित अर्थात् हुलसायमान करती है अतएव जीव का जो धन सुपात्र को दान आदि धर्म कार्यों में लगता है, वही सफल है—यह तात्पर्य है ॥

पंचम काल में गुरु भाट हो गये हैं

गुरुणो भट्टा जाया, सद्दे थुणिऊण लिंति दाणाइं।
दोण्णि वि अमुणिय सारा, दूसम समयम्मि वुड्डंति॥31॥

भावार्थ :- दाता तो अपने मानादि कषाय भावों का पोषण करने के लिए दान देता है और दान लेनेवाला लोभ होकर दाता में अविद्यमान गुणों को भाट के समान गा-गाकर दान लेता है। इस प्रकार मिथ्यात्व और कषाय के पुष्ट होने से दोनों ही संसार में डूबते हैं और यहाँ 'पंचम काल' में कहने का अभिप्राय यह है कि इस प्रकार स्तुति करके दान लेनेवाले अन्य मत में तो ब्राह्मण आदि पहले से भी थे परन्तु अब जिनमत में भी अनेक वेषधारी भाट के समान स्तुति करके दान लेनेवाले हो गये हैं, सो इस निकृष्ट काल में ही हुए हैं—ऐसा जानना ॥31॥

इस काल में जिनधर्म की विरलता क्यों

मिच्छपवाहे रत्तो, लोओ परमत्थ जाणओ थोओ।
गुरुणो गारव रसिया, सुद्धं मग्गं णिगूहंति॥32॥

भावार्थ :- धर्म का स्वरूप गुरु के उपदेश से जानने में आता है परंतु इस काल में जो गुरु कहलाते हैं, वे अपनी महिमा में आसक्त होने से यथार्थ धर्म का स्वरूप नहीं कहते इसलिए इस काल में जिनधर्म की विरलता हुई ॥32॥

देव-गुरु का यथार्थ स्वरूप पाना कठिन है

सव्वो वि अरह देवो, सुगुरु गुरु भणइ णाम मित्तेण।
तेसिं सरूव सुहयं, पुण्णविहूणा ण पावंति॥33॥

भावार्थ :- नाममात्र से तो 'अरिहंत देव और निर्ग्रंथ गुरु' ऐसा अन्य लोग भी कहते हैं परंतु उनका यथार्थ स्वरूप नहीं जानते। अत: जिनवाणी के अनुसार अरिहंतादि का सच्चा स्वरूप अवश्य ही निश्चय करना चाहिए। इस कार्य में भोला रहना योग्य नहीं है ॥33॥

जिनाज्ञारत जीव पापियों को सिरशूल हैं

सुद्धा जिण आणरया, केसिं पावाण हुंति सिरसूलं।
जेसिं ते सिरसूलं, केसिं मूढा ण ते गुरुणो॥34॥

भावार्थ :- जो जीव मिथ्यादृष्टियों को गुरु नहीं मानते हैं, यथार्थ श्रद्धानी हैं उनको वे कुगुरु यथार्थ मार्ग का लोप करनेवाले अनिष्ट लगते हैं कि ऐसे मिथ्यादृष्टियों का संयोग जीवों को कभी भी न हो॥34॥

ग्रंथकर्ता के हृदय का आक्रंदन

हा! हा! गुरुय अकज्जं, सामी णहु अत्थि कस्स पुक्करिमो।
कह जिणवयण कह सुगुरु, सावया कहय इदि अकज्जं॥35॥

भावार्थ :- जिनवचन में तो जिसके पास तिल-तुषमात्र भी परिग्रह न हो ऐसे परिग्रह रहित को 'गुरु' कहा गया है और सम्यक्त्वादि धर्म के धारक 'श्रावक' कहे गये हैं परंतु इस समय इस पंचम काल में गृहस्थों से भी अधिक तो परिग्रह रखते हैं और अपने को गुरु मनवाते हैं तथा इसी प्रकार देव-गुरु-धर्म का व न्याय-अन्याय का तो कुछ ठीक नहीं है और अपने को श्रावक मानते हैं सो यह बड़ा भारी अन्याय-अकार्य है। 'अरे रे! न्याय करनेवाला कोई नहीं है, किससे कहें'—इस प्रकार आचार्य ने खेद प्रगट किया है॥35॥

कुगुरु के त्यागी को दुष्ट कहना मूर्खता है

सप्पे दिट्ठे णासइ, लोओ ण हु किंपि कोई अक्खेइ।
जो चयइ कुगुरु सप्पं, हा! मूढा भणइ तं दुट्ठं॥36॥

भावार्थ :- सर्प से भी अधिक दु:खदायी कुगुरु हैं परंतु सर्प का त्याग करनेवाले को तो सभी लोग भला कहते हैं और जो कुगुरु को त्यागता है, उसे मूर्ख जीव निगुरा, गुरुद्रोही अथवा दुष्ट इत्यादि वचनों से संबोधित करते हैं, सो यह बड़ा खेद है॥36॥

कुगुरु सेवन से सर्प का ग्रहण भला

सप्पो इक्कं मरणं, कुगुरु अणंताई देइ मरणाई।
तो वर सप्पं गहिअं, मा कुरु कुगुरु सेवणं भद्द!॥37॥

अर्थ :- सर्प तो एक ही मरण देता है अर्थात् यदि कदाचित् सर्प डसे तो एक बार ही मरण होता है परंतु कुगुरु अनंत मरण देता है अर्थात् कुगुरु के प्रसंग से मिथ्यात्वादि की पुष्टि होने से नरक-निगोदादि में जीव अनंत बार मरण को प्राप्त

होता है इसलिए हे भद्र! सर्प का ग्रहण करना तो भला है परंतु कुगुरु का सेवन भला नहीं है, तू यह मत कर ॥37॥

अहो! यह लोक भेड़चाल से ठगाया गया

जिण-आणा वि चयंता, गुरुणो भणिऊण जे णमस्संति।
तो किं कीरइ लोओ, छलिओ गड्डरि-पवाहेण॥38॥

भावार्थ :- जिस प्रकार एक भेड़ कुएँ में गिरती है तो उसके पीछे-पीछे चली आनेवाली सभी भेड़ें कुएँ में गिरती जाती हैं, कोई भी हित-अहित का विचार नहीं करतीं उसी प्रकार कोई अज्ञानी जीव किसी एक कुगुरु को मानता है तो उसकी देखादेखी सभी लोग उसे मानने लग जाते हैं, कोई भी गुणदोष का निर्णय नहीं करता—यह अज्ञान की महिमा है ॥38॥

महा मोह की महिमा

णिदक्खिणो लोओ, जइ कुवि मग्गेइ रुट्टिया खंडं।
कुगुरुणसंगवयणे, दक्खिणं हा! महामोहो॥39॥

अर्थ :- यदि कोई रोटी का एक टुकड़ा भी माँगता है तो लोक में उसे प्रवीणता रहित बावला कहते हैं परंतु कुगुरु नाना प्रकार के परिग्रहों की याचना करता है तो भी लोग उसे प्रवीण कहते हैं सो हाय! हाय!! यह महा मोह का ही माहात्म्य है ॥39॥

कुगुरु स्व-पर अहितकारी है

किं भणिमो किं करिमो, ताण हयासाण धिट्ठ दुट्ठाणं।
जे दंसिऊण लिंगं, खिंचंति णरयम्मि मुद्धजणं॥40॥

भावार्थ :- कुगुरु अपने मिथ्या वेष से भोले जीवों को ठगकर कुगति में ले जाते हैं ॥40॥

सारिखे की सारिखे से प्रीति

कुगुरु विसंसि मोहं, जेसिं मोहाइ चंडिमा दट्ठं।
सुगुरुण उवरि भत्ती, अइ णिविडा होई भव्वाणं॥41॥

भावार्थ :- जो जीव जैसा होता है, उसकी वैसे ही जीव के साथ प्रीति होती है सो तो तीव्र मोही कुगुरु हैं, उनके प्रति तो मोहियों की ही प्रीति होती है व वीतरागी सुगुरुओं के प्रति मंद मोही जीवों की प्रीति होती है-ऐसा जानना ॥41॥

[साभार : उपदेश सिद्धांत रत्नमाला]

समाचार-दर्शन

तीर्थधाम मङ्गलायतन में पंडित विमलदादा झांझरी एवं झांझरी परिवार के ब्रह्मचारी एवं ब्रह्मचारिणी सदस्यों द्वारा तत्त्व प्रभावना

तीर्थधाम मङ्गलायतन : ज्ञात हो कि विगत 28 जुलाई से 12 अगस्त 2018 तक पंडित विमलदादा झांझरी एवं उनके परिवार की ब्रह्मचारिणी समताबेन, ज्ञानधाराबेन, पुष्पलताबेन एवं ब्रह्मचारी सुकुमाल झांझरी द्वारा पन्द्रह दिनों तक अविरलरूप से तत्त्वज्ञान की धारा बहायी गयी। पंडित विमलदादा झांझरीजी ने मोक्षमार्गप्रकाशक ग्रन्थ पर एवं बहिनों ने तत्त्वज्ञान पाठमाला पर स्वाध्याय कराया। समापन के दिन ट्रस्ट ने पुन:पुन: मङ्गलायतन में आने का आमन्त्रण प्रदान किया।

तीर्थधाम मङ्गलायतन में ब्रह्मचारी सुमतप्रकाशजी का आगमन

तीर्थधाम मङ्गलायतन : 02 अगस्त से 10 अगस्त 2018 तक ब्रह्मचारी सुमतप्रकाशजी खनियाधाना द्वारा ज्ञानवैराग्य की अभूतपूर्व बरसात हुई। जिसमें उन्होंने प्रात:काल पद्मनन्दिपंचविंशतिका, दोपहर में द्रव्य-गुण-पर्याय पर सूक्ष्म तत्त्वचर्चा एवं रात्रिकाल में श्रावकाचार पर स्वाध्याय कराया। श्री पवनजी के निमित्त से उन्हीं के आवास पर समाधिमरण आदि की वैराग्यमयी चर्चा सुनने का भी लाभ प्राप्त हुआ। आपको जानकर प्रसन्नता होगी आगामी लगनेवाला 5 नवम्बर से 10 नवम्बर 2018तक दीपावली शिविर में ब्रह्मचारी सुमतप्रकाशजी ने अपनी आने की स्वीकृति प्रदान कर दी है। आपके आगमन से मङ्गलार्थियों को भी जीवन जीने की कला से परिचय हुआ।

आध्यात्मिक शिक्षण शिविर सानंद संपन्न

अहमदाबाद : श्री कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन तीर्थ सुरक्षा ट्रस्ट मुम्बई द्वारा 41 वाँ आध्यात्मिक शिक्षण शिविर दिनांक 29 जुलाई से 5 अगस्त 2018 तक अहमदाबाद (गुजरात) के समीप स्थापित 'चैतन्यधाम' के विशाल संकुल में अनेकों कार्यक्रम एवं विविध उपलब्धियों के साथ सानंद संपन्न हुआ।

सर्व प्रथम दिन दिनांक 29 जुलाई 2018 को ध्वजारोहण, सिंहद्वार उद्घाटन, मंडप उद्घाटन, मंच उद्घाटन एवं शिविर उद्घाटन का कार्यक्रम बड़े ही भक्तिभाव पूर्वक संपन्न हुआ।

इस अवसर पर विविध साधर्मी भाई-बहिनों द्वारा श्री चौबीस तीर्थंकर मंडल विधान संपन्न हुआ तथा प्रतिदिन प्रात:काल पूज्य गुरुदेवश्री के मांगलिक सी.डी. प्रवचनों का सभी को लाभ मिला। साथ ही समागत विद्वान पंडित राजेन्द्रकुमारजी

जबलपुर, पंडित वीरेन्द्रजी आगरा, पंडित अभयकुमारजी देवलाली, पंडित बाबूभाईजी फतेपुर, पंडित शैलेशभाईजी, पंडित देवेन्द्रजी बिजोलिया, पंडित चेतनभाईजी राजकोट, पंडित रजनीशभाई दोशी, पंडित निलेशभाईजी शाह मुम्बई, पंडित विरागजी शास्त्री जबलपुर आदि विद्वानों द्वारा शास्त्र स्वाध्याय एवं विविध कक्षाओं का शिविर में पधारे बारह सौ से अधिक साधर्मीजनों ने धर्म लाभ लिया।

समस्त कार्यक्रम ब्रह्मचारी पंडित जतीशचन्दजी शास्त्री, श्री महीपालजी ज्ञायक एवं श्री अशोकजी के निर्देशन में तथा विधान संबंधी कार्य श्री अशोकजी उज्जैन, श्री सम्मेदजी टीकमगढ़ एवं पंडित सचिनजी शास्त्री द्वारा संपन्न हुआ। अंतिम दिन 5 अगस्त 2018को श्री अशोकजी बड़जात्या इंदौर की अध्यक्षता में श्री अजितजी मेहता के आतिथ्य में सलाहकार समिति का अधिवेशन संपन्न हुआ।

कार्यक्रम में विशिष्ट सहयोगी चैतन्यधाम के समस्त ट्रस्टीगण सर्वश्री अमृतभाईजी मेहता, श्री अनिलजी टी. गाँधी, श्री राजूभाई बी. शाह, श्री प्रतीकभाईजी सी. शाह तथा श्री बसंत एम. शाह आदि संपूर्ण गुजरात मुमुक्षु समाज का विशेष सहयोग रहा।

कार्यक्रम की सफलता एवं सार्थकता को देखते हुए, श्री कुन्दकुन्द कहान दिगम्बर जैन तीर्थ सुरक्षा ट्रस्ट मुम्बई द्वारा आगामी 42वाँ आध्यात्मिक शिक्षण शिविर साढ़े पाँच करोड़ मुनिभगवंतों की निर्वाण स्थली सिद्धक्षेत्र सोनागिरजी में रविवार, 21 जुलाई से 28जुलाई 2019 तक लगने की घोषणा हुई जिसका सभी ने करतल ध्वनि से स्वागत करते हुए तन-मन-धन से पूर्ण सहयोग देने की भावना व्यक्त की।

इसके पूर्व शाश्वत तीर्थधाम श्री सम्मेदशिखरजी के श्री कुन्दकुन्द-कहान नगर का छठवाँ वार्षिकोत्सव रविवार दिनांक 25 से 29 नवम्बर 2018तक संपन्न होगा। दोनों ही सिद्धक्षेत्रों की पवित्र भूमि पर पधारने हेतु आप सभी भव्यजनों को अीाी से हमारा अग्रिम मंडल आमंत्रण है। **- बसंतलाल एम. दोशी, महामंत्री**

वैराग्य समाचार

फिरोजाबाद : जैनदर्शन के प्रख्यात विद्वान, निडर वक्ता व लेखक, प्राचार्य नरेन्द्रप्रकाशजी जैन फिरोजाबाद का देहावसान हो गया। आपका जाना जिनवाणी के सेवकों की अपूरणीय क्षति है। आपके देहगमन का समाचार सुनकर संपूर्ण जैन समाज स्तब्ध है। इस प्रसंग पर तीर्थधाम मंगलायतन परिवार उनके शीघ्र मोक्षगमन की कामना करता है।

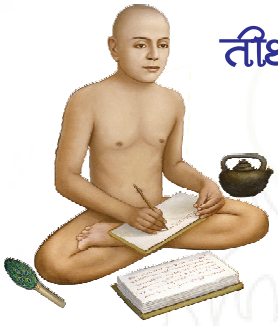

तीर्थधाम मङ्गलायतन

दशलक्षण महापर्व

शुक्रवार, दिनांक 14 सितम्बर से
रविवार, दिनांक 23 सितम्बर 2018

सत्धर्म प्रेमी बन्धुवर !

आपको जानकर प्रसन्नता होगी, प्रत्येक वर्ष की भाँति इस वर्ष भी दशलक्षण महापर्व के पावन अवसर पर **शुक्रवार, दिनांक 14 सितम्बर से रविवार, दिनांक 23 सितम्बर 2018** तक विशेष कार्यक्रम आयोजित किये जायेंगे। इस अवसर पर दशलक्षण मण्डल विधान, पूज्य गुरुदेवश्री के सी.डी. प्रवचन, **आत्मार्थी भाई श्री हितेशभाई चोवटिया, मुम्बई** द्वारा प्रासंगिक स्वाध्याय का लाभ प्राप्त होगा। ट्रस्ट के विद्वान पण्डित अशोक लुहाड़िया, पण्डित सुधीर शास्त्री एवं सचीन्द्र शास्त्री का भी लाभ प्राप्त होगा।

जो भी साधर्मीजन इस कार्यक्रम में पधारकर धर्मलाभ प्राप्त करना चाहते हैं, वे सादर आमन्त्रित हैं। यहाँ पर आवास एवं भोजन की समुचित व्यवस्था है। कृपया अपने आगमन की सूचना अवश्य प्रदान करें।

सम्पर्क सूत्र :—

9997996346 (कार्यालय); 9897890893 (पण्डित अशोक लुहाड़िया); 9756633800 (पण्डित सुधीर शास्त्री)

कार्यक्रम स्थल

तीर्थधाम मङ्गलायतन, डीपीएस सीनियर विंग के पास,
अलीगढ़-आगरा राजमार्ग, सासनी, हाथरस (उ.प्र.)

www.mangalayatan.com info@mangalayatan.com

प्रकाशन तिथि - 14 अगस्त 2018 पोस्ट प्रेषण तिथि - 16-18 अगस्त2018
Regn. No. : DELBIL / 2001/4685 Postal regn. No. : A.L.G. / 29 / 2015-17

मुमुक्षु आश्रम कोटा द्वारा मासिक समाचार पत्र 'मुमुक्षु संदेश' शीघ्र प्रकाशित होगा

कोटा : श्री प्रेमचन्द बजाज एवं श्री धर्मेन्द्रजी कोटा ने बताया कि ट्रस्ट के द्वारा शीघ्र ही मासिक समाचार पत्र 'मुमुक्षु संदेश' प्रकाशित होने जा रहा है। जिसमें पूज्य गुरुदेवश्री के तत्त्वज्ञान के साथ-साथ चारों अनुयोगों का, ज्ञान वैराग्यमय विषय भी प्रस्तुत किया जाएगा।

इस समाचार पत्र में ट्रस्ट के समाचारों सहित सम्पूर्ण मुमुक्षु समाज के समाचारों का दिग्दर्शन भी होगा। इस समाचार पत्र में 'मङ्गलायतन' मासिक के संपादक पंडित संजय शास्त्री मङ्गलायतन का विशेष सहयोग प्राप्त हो रहा है।

पं. सं. : DELBIL/2001/4685
स्वामी, प्रकाशक एवं मुद्रक पवन जैन द्वारा **मङ्गलायतन** मुद्रणालय, आगरा रोड, अलीगढ़-202001 छपवाकर, 'विमलांचल', हरिनगर, अलीगढ़-202001 से प्रकाशित। सम्पादक : पण्डित संजय जैन शास्त्री, मङ्गलायतन।

मङ्गलायतन
श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, हरिनगर, आगरारोड, अलीगढ़-202001 (उ.प्र.)
Shri Adinath-Kundkund-Kahan Digamber Jain Trust
Harinagar, Agra Road, Aligarh-202001 (U.P.)
Ph. : 9997996346, 2410010/10; Fax : 2410019/22
info@mangalayatan.com www.mangalayatan.com